संपादकीय जागरण

सोमवार, 21 मई, 2018 : ज्येष्ठ शुक्ल 7 वि. 2075

विश्वास की पूंजी पर ही रिश्तों का भविष्य टिका होता है

कुमारस्वामी की सफाई

कर्नाटक के मुख्यमंत्री बनने जा रहे जनता दल-एस के नेता कुमारस्वामी का यह बयान कांग्रेस की मजबूरी को ही अधिक रेखांकित करता है कि वह पूरे पांच साल सरकार का नेतृत्व करेंगे। ऐसा लगता है कि कुमारस्वामी को यह स्पष्टीकरण इसलिए देना पड़ा, क्योंकि अतीत में कांग्रेस और जनता दल-एस ने भाजपा को रोकने के लिए जब इसी तरह सरकार बनाई थी तो वह 20 महीने भी नहीं चल पाई थी। इस बार भी पिछली बार की तरह दोनों दलों का गठबंधन महज भाजपा का रास्ता रोकने के लिए है, न कि साझा राजनीतिक मूल्यों-मर्यादाओं की रक्षा के लिए है। दोनों दलों के बीच चुनाव प्रचार के दौरान और यहां तक कि आनन-फानन गठबंधन की घोषणा के बाद भी जैसी खींचतान देखने को मिली उससे यह नहीं लगता कि दोनों दलों का मेल-मिलाप स्थाई है और कुमारस्वामी की सरकार कर्नाटक के हितों की पूर्ति में सहायक हो सकेगी। इसके आसार इसलिए और भी कम हैं, क्योंकि एक तो दोनों दल एक-दूसरे के कटु आलोचक रहे हैं और दूसरे दोनों की नीति और नीयत में मुश्किल से ही कोई साम्य दिखता है। आखिर जब चुनाव पूर्व गठबंधन सही तरह नहीं चल पाते तब फिर इसकी उम्मीद कैसे की जाए कि केवल सत्ता हासिल करने के लिए बने चुनाव बाद गठबंधन जनता की आकांक्षाओं को पूरा कर सकते हैं? देश में चुनाव बाद बनने वाले गठबंधनों का अनुभव कोई बहुत अच्छा नहीं रहा है। ऐसे गठबंधन राजनीतिक अवसरवाद की उपज ही अधिक होते हैं। इसके अतिरिक्त यह भी किसी से छिपा नहीं कि वे सत्ता में आकर अपने संकीर्ण स्वार्थों को पूरा करना ही सर्वोच्च प्राथमिकता देते हैं। दरअसल इसी कारण वे ज्यादा दिन तक नहीं चल पाते। कहना कठिन है कि कुमारस्वामी कितनी लंबी पारी खेलेंगे, लेकिन इसकी अनदेखी नहीं की जा सकती कि पूर्व मुख्यमंत्री सिद्दरमैया जद-एस से इसीलिए बाहर हुए थे, क्योंकि उनकी कुमारस्वामी से पट नहीं रही थी।

इसमें संदेह है कि पूर्व मुख्यमंत्री सिद्दरमैया नए मुख्यमंत्री कुमारस्वामी को मनचाहे तरीके से सरकार चलाने की स्वतंत्रता प्रदान करेंगे। संदेह इसमें भी है कि भाजपा विरोध के नाम पर कांग्रेस नेतृत्व कर्नाटक में अपनी आकांक्षाओं को बिल्कुल किनारे कर देगा। जो भी हो, यदि कर्नाटक की नई सरकार ने राज्य की समस्याओं के समाधान को अपने शासन की प्राथमिकता में नहीं रखा तो विकसित माना जाने वाला यह राज्य कई नई समस्याओं से घिर सकता है। कर्नाटक की राजधानी बेंगलुरु सूचना एवं प्रौद्योगिकी के गढ़ के रूप में दुनिया भर में विख्यात है, लेकिन पिछले कुछ सालों में यह शहर दुर्दशा से ही अधिक ग्रस्त हुआ है। यदि बेंगलुरु एक आधुनिक शहर के रूप में नहीं उभर पाता तो इसके दुष्परिणाम केवल कर्नाटक को ही नहीं, बल्कि देश को भी भुगतने पड़ सकते हैं। बेहतर यह होगा कि अब फिर गठबंधन का हिस्सा बने ये दोनों राजनीतिक दल कर्नाटक के विकास का कोई बेहतर खाका न केवल पेश करें, बल्कि उस पर अमल करके भी दिखाएं। यह ठीक नहीं कि सरकार गठन के पहले ही कुमारस्वामी कांग्रेस की मजबूरी का लाभ उठाने के फेर में दिख रहे हैं। यह तो वह रवैया है जो कलह और विग्रह को ही निमंत्रण देगा।

अवैध शराब का तंत्र

प्रदेश में जहरीली शराब से हुई मौतों ने एक बार फिर आबकारी विभाग की कार्यशैली पर सवाल खड़े किए हैं। आखिर क्या वजह है कि किसी न किसी जिले में हर साल जहरीली शराब लोगों की असमय मौत का कारण बनती है। सरकार की ओर से कड़े कदम उठाने के दावे जरूर किए जाते हैं, लेकिन अधिकारियों और शराब ठेकेदारों की मिलीभगत से फिर अवैध शराब का धंधा शुरू हो जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों में फिर भट्ठियां धधकने लगती हैं और कच्ची शराब का धंधा शुरू हो जाता है। कानपुर नगर और देहात में शराब से 12 लोगों की मौत का एक कारण मिलावट भी संभव है क्योंकि लोगों ने सरकारी ठेके से इसकी खरीद की थी। असली वजह तो विस्तृत जांच के बाद ही सामने आएगी, लेकिन दो राय नहीं कि सरकार की सख्ती के बावजूद अवैध शराब के तंत्र को नष्ट नहीं किया जा सका है। इससे पहले 2017 में आजमगढ़ में भी जहरीली शराब से 14 लोगों की मौत हुई थी और जांच की कवायद के बाद पूरे मामले को भुला दिया गया। पूर्व के मामलों में भी जांच की औपचारिकता निभाने के बाद सख्त कदम नहीं उठाए गए।

दो राय नहीं कि सरकार की सख्ती के बावजूद अवैध शराब के तंत्र को नष्ट नहीं किया जा सका है

आबकारी विभाग राजस्व देने वाले सबसे बड़े विभागों में है। सरकार ने शराब से मौतें होने पर पूर्व में तय कानूनों को कड़ा भी किया है। जहरीली शराब से मौत पर अब दोषियों को मृत्युदंड का प्रावधान किया गया है। इसमें आजीवन कारावास के साथ ही 10 लाख रुपये का भारी-भरकम जुर्माना चुकाना होगा। सरकार ने 107 वर्ष पुराने आबकारी एक्ट में संशोधन कर कानून को कड़ा बनाया है, लेकिन लगता है कि इसके संदेश लोगों के बीच तक नहीं पहुंचे हैं।

कह के रहेंगे

माधव जोशी

जागरण जनमत

कल का परिणाम

क्या कर्नाटक में बीएस येद्दयुरप्पा ने शक्ति परीक्षण से पहले इस्तीफा देकर सही किया?

आज का सवाल

क्या भारत-रूस अनौपचारिक वार्ता से दोनों देशों में पुरानी गर्मजोशी वापस लौटेगी?

अपनी राय और अधिक लोगों तक पहुंचाने के लिए अपने मोबाइल के मैसेज बॉक्स में जाकर POLL लिखें, स्पेस देकर Y, N या C लिखकर 57272 पर भेजें
Y -हां, N-नहीं, C-कह नहीं सकते

परिणाम जागरण इंटरनेट संस्करण के पाठकों का मत है।
सभी आंकड़े प्रतिशत में।

अंकगणित मात्र नहीं है जनतंत्र

हृदयनारायण दीक्षित

संसदीय पद्धति में बेशक अंकगणित की महत्ता है, लेकिन वास्तविक जनतंत्र अंकगणित नहीं बल्कि बीजगणित से फलीभूत होता है

लोकतंत्र भारतीय प्रकृति है। भारत के लोगों की जीवन शैली। संविधान निर्माताओं ने ब्रिटिश संसदीय शासन पद्धति का अनुसरण किया। संसदीय पद्धति में बेशक अंकगणित की महत्ता है, लेकिन वास्तविक जनतंत्र अंकगणित नहीं बीजगणित से फलीभूत होता है। अटल बिहारी वाजपेयी ने ठीक कहा था कि लोकतंत्र 51 बनाम 49 का खेल नहीं है। जनभावना का सम्मान और खेल के नियम जरूरी हैं। संविधान सभा ने इसके लिए अनेक संस्थाएं गढ़ीं। सभा ने नवंबर 1949 में संविधान का काम पूरा किया। तात्कालिक चुनौतियों और समस्याओं के समाधान संविधान का भाग बने। 70 साल हो गए। अनेक नई चुनौतियां आईं। संविधान में 100 से ज्यादा संशोधन हो गए। बावजूद इसके चुनाव बाद सरकार गठन के मामले में बहुधा शोर शराबा होता है। लोकतंत्र की हत्या के आरोप प्रत्यारोप लगते हैं। आरोप लगाने वाले नहीं जानते कि भारतीय लोकतंत्र अजर अमर है, उसकी हत्या नहीं की जा सकती। कर्नाटक में चुनाव से लेकर येद्दयुरप्पा के शपथ लेने और त्याग पत्र देने तक की सारी घटनाओं ने भारत का मन आहत किया है। इसलिए अब नई चुनौतियों के बरक्स सभी विषयों पर पुनर्विचार की आवश्यकता है। कर्नाटक में कांग्रेस की सरकार थी। सरकार ने अपने कार्यकाल में नीति और कार्यक्रम के अनुसार जनता की सेवा की, लेकिन कर्नाटक की जनता को उसका कामकाज गलत लगा। भाजपा सबसे बड़ा दल बनी। जनादेश कांग्रेस के विरुद्ध है ही। बेशक अंकगणित का बहुमत किसी को नहीं मिला। कायदे से कांग्रेस को जनादेश और जनअभिलाषा का सम्मान करना चाहिए था, लेकिन उसने चुनाव नतीजों के फौरन बाद अपने कट्टर विरोधी सबसे छोटे दल को सरकार बनाने के समर्थन की घोषणा की। कांग्रेस का आचरण जनमत के अपमान के साथ लोकतंत्र की भी पिटाई क्यों नहीं है? सरकारिया आयोग और सर्वोच्च न्यायपीठ ने चुनाव बाद के गठबंधन को सबसे बड़े दल के बाद रखा है। राज्यपाल ने इसी अनुसरण में सबसे बड़े दल को बुलाया। तब राज्यपाल भाजपा के एजेंट क्यों और कैसे हो गए? सवाल और भी हैं। स्पष्ट बहुमत न रखने वाले सबसे बड़े दल द्वारा बहुमत जुटाने का प्रयास बेईमानी क्यों है? सबसे बड़े दल के ऐसे प्रयास खरीद फरोख्त ही क्यों हैं? कर्नाटक में सब कुछ उल्टा-पुल्टा हो गया। सबसे छोटा दल सत्ता में, उससे बड़ा दल समर्थक है और सबसे बड़ा दल लोकतंत्र विरोधी कहा जा रहा है।

कर्नाटक चुनाव का त्रिशंकु जनादेश भी अस्पष्ट नहीं है। यह जनादेश कांग्रेस के खिलाफ है। यह तथ्य सुस्पष्ट है। यह जनादेश भाजपा के पक्ष में है और स्पष्ट बहुमत के करीब है, लेकिन अंकगणित में थोड़ा पीछे है। संविधानविद् और देश के वरिष्ठ नेतागण हम विद्यार्थियों का मार्गदर्शन करें कि इस जनादेश में सबसे छोटी पार्टी जनता दल (एस) की सरकार बनाने का निर्देश कहां और क्यों है? सबसे छोटे दल की सरकार बनाने के लिए ही देश की सर्वोच्च न्यायपीठ का दरवाजा देर रात क्यों खटखटाया गया। न्यायालय ने रात 2 बजे सुनवाई की। राज्यपाल के अधिकार को चुनौती दी गई। कर्नाटक ने तमाम प्रश्न उठाए हैं। पहला त्रिशंकु विधानसभा की स्थिति में सबसे बड़े दल को सरकार गठन के लिए निमंत्रण देने का है। क्या निमंत्रण पाने और शपथ लेने के बाद उसे विश्वासमत पाने के लिए विधायकों से संवाद नहीं करना चाहिए? कर्नाटक प्रकरण में ऐसे संवाद को खरीद फरोख्त और लोकतंत्र की हत्या कहा गया है। संविधान में मुख्यमंत्री की नियुक्ति के संबंध में संक्षिप्त शब्दावली है। कहा गया है कि मुख्यमंत्री की नियुक्ति राज्यपाल करेंगे। वर्तमान राजनीतिक वातावरण के कारण इसमें स्पष्टता का अभाव है।

राज्यपाल गरिमामय संस्था है। कर्नाटक के राज्यपाल ने विधिमान्य कर्त्तव्य ही निभाया। तो भी मुख्यमंत्री की नियुक्ति वाली संवैधानिक शब्दावली का निर्वचन जरूरी है। याद कीजिए पहले आम चुनाव (1952) में मद्रास प्रेसिडेंसी (आंध्र, तमिलनाडु व मालाबार) में कांग्रेस हार गई। राज्यपाल ने अल्पमत वाले राजगोपालाचार्य को शपथ दिलाई। हरियाणा के राज्यपाल ने 1982 में बहुमत दल के नेता देवीलाल के बजाय भजनलाल को शपथ दिलाई। अयोध्या घटना के दिन (6 दिसंबर 1992) बहुमत प्राप्त मुख्यमंत्री कल्याण सिंह ने त्याग पत्र दिया, लेकिन राज्यपाल ने सरकार बर्खास्त की। अयोध्या के बहाने राज्यपालों द्वारा कई अन्य भाजपा सरकारे भी वध की गईं। 1997 में उत्तर प्रदेश के राज्यपाल ने मुख्यमंत्री कल्याण सिंह को हटाया, जगदंबिका पाल को शपथ दिलाई। वह न्यायालय के निर्देश पर हुए विशेष सत्र में फिर से जीते। ऐसे अप्रिय प्रसंग ढेर सारे हैं। राज्यपालों की गरिमा बचाने व संवैधानिक कृत्यों के निर्वहन के लिए पुनर्विचार जरूरी है। संविधान निर्माता ऐसी चुनौतियों का पूर्वानुमान नहीं लगा सके थे। मुख्यमंत्री की नियुक्ति और विश्वासमत की प्रक्रिया का सुस्पष्ट प्रावधान समय की मांग है। संविधान निर्वचन के प्रश्नों पर सभी दलों को एक राय होना चाहिए। 'संविधान बचाओ' की राजनीति का कोई मतलब नहीं।

भारतीय संसदीय जनतंत्र आदर्श परंपराओं के विकास में प्रायः असफल रहा है। स्वाधीनता के बाद आदर्श संसदीय परंपरा के विकास का अवसर आए। स्वाधीनता आंदोलन में तमाम राजनीतिक दल और गैर-राजनीतिक समूह थे। फिर कांग्रेस के पास दीर्घकाल तक सत्ता रही। भारत में ब्रिटिश संसदीय मॉडल की नकल हुई, लेकिन इसके आदर्श आधारभूत तत्व नहीं अपनाए गए। बीसवीं सदी में यूनाइटेड किंगडम में 20 सरकारें बनीं। कुल 10 सरकारें ही बहुमत की थीं। पांच गठबंधन सरकारें चलीं और पांच अल्पमत की भी। उनके गठबंधन नीति और मुद्दा आधारित थे। ब्रिटिश परंपरा का सुंदर वाक्य है, 'एग्रीमेंट टु डिसएग्री' अर्थात असहमत बने रहने की सहमति। अल्पमत की सरकारों को विपक्ष ने विधायन आदि मसलों पर गुणदोष के आधार पर समर्थन दिए, लेकिन विश्वासमत बनाए रखा। क्या भारत इससे कुछ सीख सकता है?

कनाडा में 1921 से लेकर 2005 तक तमाम अल्पमत सरकारें चलीं और स्वीडन में भी। उन देशों के दल राष्ट्रहित को सर्वोपरि मानते हैं। विपक्षी सरकारों को गिराना ही कर्त्तव्य नहीं मानते। वे जनादेश का सम्मान करते हैं। कानून या बजट पारण आदि विषयों पर असहमत रहते हैं, संशोधन देते हैं, लेकिन सरकार चलने देते हैं। भारत के किसी दल की आलोचना या प्रशंसा मूल विषय नहीं है। असली बात है जनादेश जनभावना और देशहित। मूलभूत प्रश्न यही है कि भारत के दलतंत्र में शत्रुता जैसा भाव क्यों है? राजनीति के प्रति जनविश्वास का घटते जाना राष्ट्रीय चिंता का विषय क्यों नहीं है? गठबंधनों का भी कोई संवैधानिक आधार और नियम क्यों नहीं है? चुनाव बाद के गठबंधनों की नैतिकता और स्थायित्व की प्रतिभूति क्या है? एक व्यक्ति का दल बदल दंडनीय है, दो तिहाई का सम्माननीय क्यों हैं? सत्तागठन में दूसरे दल के साथ फौरन पाला बदल लेना उचित क्यों है? उसी दल के किसी एक या दो विधायकों का पाला बदल अनुचित क्यों है? कर्नाटक के नाटक से उठे प्रश्नों पर पुनर्विचार अति आवश्यक है इसलिए और भी कि ये प्रश्न नए नहीं पुराने भी हैं। राजनीतिक खेल के सुस्पष्ट नियम बनाना बहुत जरूरी है।

(लेखक उत्तर प्रदेश विधानसभा के अध्यक्ष हैं)

response@jagran.com

चीनी उद्योग को उबारने की जरूरत

केसी त्यागी

निःसंदेह सरकार का यह कदम सराहनीय है, लेकिन समयबद्ध भुगतान के अभाव में किसानों का भला नहीं हो पा रहा है

बीते दिनों केंद्रीय मंत्रिमंडल द्वारा चीनी उद्योग को दी जाने वाली सहायता राशि की घोषणा से मिल मालिकों को राहत सी महसूस हुई है। इसमें किसानों को साढ़े पांच रुपये प्रति क्विंटल की दर से सब्सिडी भुगतान किए जाने का निर्णय लिया गया है। इस फैसले के अनुसार किसानों द्वारा मिलों में बेचे गए गन्ने की मात्रा के आधार पर यह सब्सिडी मिल मालिकों की तरफ से किसानों तक जाएगी। हालांकि सरकार ने यह फैसला गन्ना उत्पादकों का फसल वर्ष 2017-2018 के दौरान मिलों पर बकाया कम करने के प्रयास में लिया गया है, लेकिन अंततः इससे मिल मालिकों का ही फायदा होगा। सच है कि चीनी मिलों पर किसानों का 20,000 करोड़ रुपये से अधिक का बकाया है जिसके भुगतान में प्रत्येक वर्ष की तरह हीलाहवाली की जा रही है। खाद्य मंत्रालय के अनुसार गन्ना खरीद के बाद मिलों द्वारा किसानों को भुगतान किए जाने वाले उचित एवं लाभकारी मूल्य यानी एफआरपी के तहत दी जाने वाली कीमत से साढ़े पांच रुपये प्रति क्विंटल की सहायता सीधे तौर पर किसानों के खाते में जाएगी जिससे मिलों का बोझ कम हो सकेगा। इस फैसले से मिलों को लगभग 1,540 करोड़ रुपये की सब्सिडी मिलेगी और किसानों को साढ़े पांच रुपये प्रति क्विंटल का सीधा भुगतान हासिल होगा।

निःसंदेह सरकार का यह कदम सराहनीय है, लेकिन समयबद्ध भुगतान के अभाव में किसानों का भला नहीं हो पा रहा है। किसी भी वर्ष गन्ना उत्पादकों को वक्त पर सही कीमत नहीं मिल पाती जबकि सेंट्रल शुगरकेन ऑर्डर के अनुसार मिलों द्वारा किसानों को खरीद के 14 दिनों के भीतर कीमत भुगतान करने का आदेश है। ऐसा नहीं होने पर 15 फीसदी वार्षिक दर से ब्याज देने का प्रावधान है। अफसोस की बात है कि ऐसे आदेश कागजों तक सीमित रहे हैं। कई बार उत्पादन में अधिकता के कारण भी किसानों को लागत मूल्य से वंचित रहना पड़ता है। पिछले तीन गन्ना वर्षों के दौरान इसका उत्पादन क्रमशः 283, 251 और 202 लाख टन था जो इस बार बंपर उपज के बाद 317 लाख टन होने का अनुमान है। सर्वाधिक बढ़त के साथ महाराष्ट्र इस वर्ष पिछले साल की तुलना में दोगुने से भी अधिक उत्पादन कर रहा है। ऐसे में केंद्र सहित राज्य सरकारों के समक्ष चुनौती है कि मिलों की रक्षा कैसे की जाए? बंपर उत्पादन का नुकसान किसानों को भी न हो, यह सरकार के समक्ष बड़ी चुनौती होनी चाहिए। इस वर्ष चीनी का अनुमानित उत्पादन 3.17 करोड़ टन है जो जो पिछले सितंबर-अक्टूबर सत्र के 2.3 करोड़ टन की तुलना में लगभग 56 फीसदी अधिक है। इसका असर चीनी की घरेलू कीमतों में इतना पड़ा कि इसका थोक भाव 26 रुपये प्रति किलोग्राम के साथ तीन वर्षों के निचले स्तर पर आ गया। भारत में इस वर्ष औसतन 2.5 करोड़ टन चीनी उपभोग तथा 20 लाख टन के निर्यात का लक्ष्य है। अंतरराष्ट्रीय बाजार में इसकी तीव्र गिरावट से अपेक्षित निर्यात भी संशय के घेरे में है। विश्व का तीसरा बड़ा चीनी निर्यातक होने के बावजूद इस बार निर्यात का विकल्प आसान नहीं है। सरकार द्वारा मार्च में चीनी निर्यात 'कर' में 20 फीसदी की रियायत शायद इसी की तैयारी थी। मिलों द्वारा समय-समय पर सरकार से यह गुहार भी लगाई जाती रही है कि किसानों को गन्ने की कीमत का भुगतान करने हेतु उन्हें दो किस्तों का विकल्प और कॉपरेटिव सोसाइटी को दिए जाने वाले कमीशन को दो रुपये प्रति क्विंटल कर दिया जाए जो वर्तमान में 7.65 रुपये प्रति क्विंटल के भाव से दिया जाता है। मौजूदा हालात में मिल मालिक चीनी की बहुतायन और कीमत में गिरावट को लेकर चिंतित हैं। उनका तर्क है कि रंगराजन फॉर्मूले के तहत 10.8 फीसदी की रिकवरी रेट पर किसानों को किए जाने वाले भुगतान से उन्हें प्रति क्विंटल 62 रुपये का नुकसान होगा। उद्योग की रक्षा भी सरकार की जिम्मेदारी है, लेकिन इस दिशा में किसानों की अनदेखी कृषि उद्योग को कमजोर करती आ रही है।

गन्ना किसानों की समस्या लंबे समय से चिंता का विषय बनी हुई है। प्रमुख उत्पादक राज्यों में विभिन्न दलों के घोषणा पत्रों में यह अहम मुद्दा भी बनता रहा है, लेकिन सरकारों की लगातार असंवेदनशीलता के कारण 'लेट पेमेंट' की व्यवस्था में सुधार नहीं हो पाया। वर्ष 2014-15 में एफआरपी में पांच फीसदी की मामूली बढ़त के बाद पिछले वर्ष 2017-18 हेतु 25 रुपये प्रति क्विंटल की बढ़ोतरी की गई थी। गन्ने का सबसे अधिक उत्पादन करने वाले उत्तर प्रदेश में भी इसमें तीन सालों तक कोई बढ़ोतरी नहीं हुई। चुनावी वर्ष के कारण नवंबर 2016 में राज्य समर्थित मूल्य 'एसएपी' में 25 रुपये की वृद्धि किसानों के लिए उत्साहजनक नहीं रही। हालांकि केंद्र सरकार रंगराजन फार्मूले के अनुसार चीनी के राजस्व का 75 फीसदी हिस्सा उत्पादकों को भुगतान करने को प्रयत्नशील है, लेकिन इस प्रावधान में रिकवरी रेट के साथ जुड़ी शर्तें इन्हें परेशान करने वाली हैं। उत्तर प्रदेश में इस निर्देश से किसानों के बीच राज्य परामर्श मूल्य जो एफआरपी से अक्सर अधिक होता है, समाप्त हो जाने का खतरा है।

महाराष्ट्र और कर्नाटक में इस फार्मूले से कीमत निर्धारित हो रही है। इस बीच किसानों के लिए राहत की बात यही है कि सरकार एफआरपी सुनिश्चित कराने को लेकर प्रतिबद्ध रही है। आगामी गन्ना सत्र 2018-19 हेतु कृषि लागत एवं मूल्य आयोग यानी सीएसीपी द्वारा एफआरपी में 20 रुपये प्रति क्विंटल की प्रस्तावित बढ़ोतरी भी राहत की आस है। यह पहली बार नहीं जब मिलों का बोझ कम करने के लिए सरकारी सहायता दी जा रही है। किसानों का बकाया चुकाने के नाम पर कई बार आयात कर में इजाफा व मिलों को सब्सिडी मिलती रही है। 2014 के लोकसभा चुनाव से ठीक पहले संप्रग सरकार द्वारा चीनी मिलों का 6600 करोड़ का ब्याज मुक्त कर्ज, शुगर डेवलपमेंट फंड से महाराष्ट्र की 19 चीनी मिलों को केंद्र सरकार द्वारा 140 करोड़ रुपये की वित्तीय सहायता, पेट्रोल में 5 फीसदी एथनॉल मिश्रण की अनिवार्यता, एथनॉल के दाम में बढ़ोतरी आदि सहयोगों के जरिये मिलों को मदद मुहैया कराई गई, लेकिन गन्ना उत्पादकों की लॉबी न होने से वे मजबूर रहे।

बीते कुछ वर्षों में किसानों की बदहाली किसी से छिपी नहीं रही है। उनके आक्रोश को शांत करने के लिए कुछ हद तक कर्ज माफी भी हुई, लेकिन वन नाकाफी होने के साथ ही अस्थाई राहत है। इस साल बजट में किसानों को एमएसपी के अतिरिक्त 50 फीसदी का लाभकारी मूल्य देने की घोषणा हुई है, लेकिन यह स्पष्ट नहीं है कि इसे कैसे मूर्त रूप दिया जाए? वर्ष 2022 तक किसानों की आय दोगुनी करना सरकार के मुख्य एजेंडे में जरूर है, लेकिन अब इस दिशा में तेजी से कदम उठाने की दरकार है।

(लेखक जदयू के राष्ट्रीय प्रवक्ता हैं)

response@jagran.com

ऊर्जा

व्यक्तित्व

दुनिया में हर व्यक्ति दूसरे से भिन्न है। यह भिन्नता ही व्यक्ति विशेष की पहचान है। जन्म के समय हम माता-पिता और पूर्वजों से एक विशेष 'जीनोटाइप' लेकर इस दुनिया में आते हैं। हालांकि गुणसूत्रों यानी क्रोमोसोम्स की संख्या सभी में समान होती है, पर गुणसूत्रों पर स्थित तमाम जीन उस व्यक्ति का जीनोटाइप बनाते हैं, जो उसके व्यक्तित्व की पैतृक धरोहर होती है। मानव की सोचने-समझने की क्षमता का विकास उसके चारों तरफ मौजूद वातावरण से होता है। लोगों का बाहरी परिवेश कभी-कभी उनके अंतःकरण से मेल नहीं खाता। जब हम किसी व्यक्ति के व्यक्तित्व का बारीकी से विश्लेषण करते हैं, तो बाह्य और अंदरूनी व्यक्तित्व में विरोधाभास अच्छे खासे नजर आने लगते हैं। ये विरोधाभास उस व्यक्तित्व के कृतित्व में भी नजर आते हैं। भारतीय मनीषियों ने अठारह पुराणों के माध्यम से हम भारतीयों के व्यक्तित्व व कृतित्व को सुधारने का महत्वपूर्ण प्रयास किया है। नैमिषारण्य में 88 हजार मुनियों को तमाम पुराणों के माध्यम से श्रीसूत जी ऐसी कथाएं सुनाते हैं, जिनसे प्रेरणा लेकर हमारा व्यक्तित्व और कृतित्व दोनों ही समाज कल्याण के लिए प्रशस्त हो सकता है, बशर्ते हम पुराणों का सम्यक अनुशीलन कर सकें।

श्रीमद्भगवत पुराण, देवी पुराण और शिव पुराण ऐसे पुराण हैं, जिनका श्रवण करने की एक भारतीय परंपरा है। व्यक्ति का व्यक्तित्व मंगलमय बनाने के तमाम कथानक इन पुराणों में मौजूद हैं। अलग-अलग आचार्य अपनी क्षमतानुसार प्रभाव छोड़ते हैं। कुछ आचार्यों की वक्ता के रूप में बड़ी मांग होती है। पिछले कुछ वर्षों से कुछ लोगों ने धर्म गुरु का चोला पहनकर धर्म को व्यापार के रूप में तब्दील कर दिया है। धर्म के नाम पर कई आडंबरों का प्रसार हुआ है। इस कारण भारतीय जनमानस की श्रद्धा को आघात लगा है। व्यक्तित्व और कृतित्व का परिमार्जन प्रभावित हुआ है। समाज में बलात्कार जैसी यौन विकृतियां और तमाम अनाचार फले-फूले हैं। भारतीय मानस बैचेन है। इस बैचेनी को समाप्त करने के लिए विद्वान आचार्यों द्वारा हमारे पुराण साहित्य का सर्वसुलभ और आडंबररहित प्रचार व प्रसार किया जाना चाहिए। ऐसा इसलिए, क्योंकि इस साहित्य में वे नैसर्गिक मूल्य और बातें पाई जाती हैं, जो व्यक्ति के व्यक्तित्व को खामियों से दूर रखती हैं।

डॉ. अवधेश दीक्षित

पाठकनामा

pathaknama@nda .jagran.com

जनादेश का निरादर करने वाली राजनीति

संजय गुप्त के आलेख गठबंधन राजनीति का खुला खेल से यह स्पष्ट होता है कि वर्तमान में जनादेश का निरादर करने वाली दूषित राजनीति का दौर शुरू हो गया है, जो लोकतंत्र के लिए घातक है। खंडित जनादेश की स्थिति में राजनीतिक दलों का स्वेच्छाचार किस तरह से जनादेश का उपहास उड़ा रहा है, यह कर्नाटक में देखने को मिला। चुनाव परिणामों के बाद भाजपा के बहुमत के करीब ठिठकने पर, कांग्रेस ने पलटी मारने में देर नहीं की और दूसरे नंबर की पार्टी होने के बाद भी उसने स्वयं सरकार बनाने के लिए तीसरे स्थान पर खड़े जदएस का समर्थन न मांग कर, बड़ी चालाकी से अपना समर्थन देने का प्रस्ताव रखते हुए, उसे सरकार बनाने का प्रलोभन दे दिया। अब अंधे को क्या चाहिए-दो आंखें की तर्ज पर, जदएस ने भी मुफ्त में मिल रही सत्ता को लपकने में देर नहीं की और जनादेश की धज्जियां उड़ाते हुए, कांग्रेस के समर्थन से सरकार बनाने का दावा पेश कर दिया। दूसरी ओर सबसे बड़े दल के रूप में उभरी भाजपा के येद्दयुरप्पा ने नैतिक रूप से सरकार बनाने का दावा करने और मुख्यमंत्री पद की शपथ लेने के बाद भी पर्याप्त संख्याबल न होने की स्थिति में त्यागपत्र देकर राजनीतिक शुचिता का जो उदाहरण प्रस्तुत किया है, वह जनादेश का निरादर करने वाली विकृत राजनीति के मुंह पर एक तमाचा है। जिसकी गूंज 1996 में भी पूरे देश ने तब सुनी थी जब 13 दिन की अटल बिहारी वाजपेयी सरकार ने केवल एक वोट से पराजित होकर, विपक्ष में बैठना स्वीकार किया था। स्वतंत्र भारत में राजनीतिक शुचिता का यह अप्रतिम उदाहरण था, जिसे भाजपा ने कर्नाटक में दोहराकर लोकतांत्रिक नैतिकता की एक बड़ी लकीर भले ही खींची हो, लेकिन प्रश्न ये है कि जनादेश का निरादर करने वाली इस विकृत राजनीति पर अंकुश कौन लगाएगा? जबकि खंडित जनादेश का संविधान में कोई नीतिगत समाधान नहीं है।

डॉ. विष्णु प्रकाश पाण्डेय, अलीगढ़

कैसा जनादेश ?

कर्नाटक के सियासी दंगल में बड़े ही दमखम के साथ तीनों दल उतरे। जनादेश आया जिसमें 104 सीट के साथ भाजपा सबसे बड़ी पार्टी के रूप में सामने आई, मुख्यमंत्री पद की शपथ भी ली, परंतु जादुई आंकड़ा पूरा नहीं होने के कारण सरकार नहीं बन पाई। कर्नाटक के चुनाव प्रचार में तीनों दलों ने एक दूसरे की खूब आलोचना की, काफी सियासी रोमांच देखने को मिला और जब बात आई सत्ता पर काबिज होने की तो जो दल सबसे कम सीटे लाया, जिसे सबसे कम जनादेश प्राप्त हुआ वही मुख्यमंत्री पद पर अब काबिज होगा। क्या यह सही मायने में जनादेश की जीत है या नैतिकता की हार है?

अभिषेक मालवीय, नोएडा

बेटियों पर गर्व

आज लड़कियां हर क्षेत्र में आगे हैं और अपनी काबिलियत का लोहा भी मनवा रही हैं। इसकी मिसाल हैं नेपाल की रीता शेरपा जिन्होंने एक अदभुत रिकॉर्ड दर्ज कराया है। वह दुनिया के सबसे ऊंचे पर्वत शिखर माउंट एवरेस्ट पर सबसे ज़्यादा 22 दफा चढ़ाई करने वाली पहली महिला बन चुकी हैं। इससे पहले किसी पुरुष ने भी यह उपलब्धि हासिल नहीं किया था। वहीं दूसरी तरफ गुरुग्राम की एक बेटी दीया बजाज ने अपने पिता के साथ एवरेस्ट की चढ़ाई कर नायाब कीर्तिमान रचा है।

सौरभ पाठक, ग्रेटर नोएडा

एकता में बल

सार्वभौम सत्य है कि एकता में बल है और एक और एक ग्यारह होते हैं। ताजा कर्नाटक चुनाव में मात खाई कांग्रेस और जेडीएस को यह तुरंत समझ में आ गया और वे सत्ता प्राप्ति के लिए तुरंत एक हो गए। पार्टियों को यह अब अच्छे से समझ में आ गया है कि बिना एकता के वे आगामी 2019 के चुनाव में सफल नहीं हो सकते।

वेद मामूरपुर ,नरेला

कर्जमाफी की राजनीति

देश में किसानों की स्थिति अच्छी नहीं है। इसके कई कारण हैं। एक तो परिवार बढ़ने से खेती का रकबा घट रहा है और दूसरे कोई फसल ऐसी नहीं है जो तुरंत नकद दे सके। हर फसल काफी समय और लागत लेती है। लंबे समय बाद भी इतना लाभ नहीं मिलता कि, जिससे किसान की आर्थिक हालत में सुधार होने की कोई उम्मीद जगे। सरकारें भी किसानों की स्थिति सुधारने के लिए कोई कारगर योजना नहीं ला पा रही हैं। केवल चुनाव के समय ही किसानों को कर्जमाफी का लालच दिया जाता है। चुनाव के समय हर पार्टी किसान की कर्जमाफी को प्राथमिकता देती है। देश का एक बड़ा तबका किसान है, इसलिए पार्टियों को इसका फायदा भी मिलता है, भले ही किसानों को इसका कोई खास लाभ न मिल सके। कुछ दिन बाद ही मध्यप्रदेश और राजस्थान के चुनाव आने वाले हैं, तो शायद किसानों के लिए कोई बड़ी योजना की घोषणा भी हो सकती है। आज किसान क्यों कर्ज के बोझ तले दबते जा रहे हैं, इसकी सुध कोई पार्टी नहीं ले रही है। बजट में किसानों के लिए लागत मूल्य डेढ़ गुना से लेकर कृषि बीमा तक की तमाम योजना घोषित की जाती हैं, उसके बावजूद किसान आत्महत्या करने पर मजबूर हो रहे हैं। कोई भी किसान शौक से कर्जमाफी की मांग नहीं करता, उसे स्थिति मजबूर करती है। अगर किसान को अपने उत्पादों का उचित मूल्य मिल जाए या फिर फसल बर्बाद होने पर समय पर बीमा राशि मिल जाए तो किसान कर्ज में नहीं डूबेंगे। सरकारें जब तक एक पूर्णगामी योजना नहीं लागू करतीं, तब तक कितनी भी कर्ज माफी क्यों न हो जाए, किसानों की स्थिति जस की तस बनी रहेगी।

नीरज झा, दिल्ली विवि

ट्वीट-ट्वीट

एसी कार में बैठ कर ठेला, रिक्शा वाले को बार-बार हॉर्न देने से पहले याद रखिए कि 40-45 डिग्री सेल्सियस तापमान में जलती हुई सड़क से हट जाने की जल्दी उन्हें आप से ज्यादा है। इसलिए थोड़ा सा संयम व धैर्य बनाए रखें।

श्वेता भट्टाचार्य@spbhattacharya

पश्चिम बंगाल में लोकतंत्र को कूड़ेदान में डालकर, हिंसा और आतंक का सहारा लेकर पंचायत चुनावों में कब्जा करने वाली ममता बनर्जी अभी कर्नाटक में लोकतंत्र की दुहाई दे रही हैं। यह हास्यास्पद नहीं, बल्कि शर्मनाक है।

हृदयेश जोशी@hridayeshjoshi

भारत उर्वरकों का बड़ा आयातक रहा है। इस सरकार ने देश में गोरखपुर, सिंदरी, बरौनी, तलचर और रामगुंडम में पांच प्रमुख उर्वरक कारखानों को नई धार दी है जिससे देश को आत्मनिर्भर बनाने के साथ ही गैस पाइपलाइन बिछाने और भारत के पूर्वी हिस्से को विकसित बनाने में मदद मिलेगी।

अमिताभ कांत@amitabhk87

दंतेवाड़ा में कई जवान शहीद हुए हैं। अब नक्सल प्रभावित इलाकों में सेना और अफस्पा लगा दिया जाए। हमें बेहतर तकनीक के साथ प्रभावी कदम उठाने होंगे। जवानों की इस शहादत पर अगर जेएनयू में जश्न मनाया जाएगा तो मुझे कोई हैरानी नहीं होगी।

अंशुल सक्सेना@AskAnshul

जनपथ

छत्तिस फीसद गिर गया अट्ठारह को राज,
बुरा न मानो आ रही लोकतंत्र पर लाज।
लोकतंत्र पर लाज 'लोक' ने चुनकर भेजा,
लेकिन उनको देख जलाएं लोग कलेजा।
सत्ता पाने हेतु जुगाडू जुटकर बत्तिस,
रहे मलाई काट भले यूं रहते छत्तिस।

– ओमप्रकाश तिवारी

संस्थापक-स्व. पूर्णचन्द्र गुप्त. पूर्व प्रधान संपादक-स्व.नरेन्द्र मोहन. संपादकीय निदेशक-महेन्द्र मोहन गुप्त. प्रधान संपादक-संजय गुप्त, नीतेन्द्र श्रीवास्तव द्वारा जागरण प्रकाशन लि. के लिए डी-210, 211, सेक्टर-63 नोएडा से मुद्रित एवं 501, आई.एन.एस. बिल्डिंग, रफी मार्ग, नई दिल्ली से प्रकाशित, संपादक (दिल्ली एनसीआर) -विष्णु प्रकाश त्रिपाठी*
दूरभाष : नई दिल्ली कार्यालय : 23359961-62, नोएडा कार्यालय : 0120-3915800, E-mail: delhi@nda.jagran.com, R.N.I. No 50755/90 *इस अंक में प्रकाशित समस्त समाचारों के चयन एवं संपादन हेतु पी.आर.बी. एक्ट के अंतर्गत उत्तरदायी। समस्त विवाद दिल्ली न्यायालय के अधीन ही होंगे। हवाई शुल्क अतिरिक्त। वर्ष 28 अंक 306